कोरकू जनजाति में लोक कथाओं का प्रकार्य : मानवशास्त्रीय विश्लेषण

विवेक कुमार
शोधार्थी
मानवविज्ञान एवं जनजाति अध्ययन विभाग
झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची

महेंद्र कुमार जायसवाल
शोधार्थी
मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

शोध सारांश :-

लोक-कथा किसी भी समाज के बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रचलित कथा रचना होती है। इन रचनाओं में किसी भी सजीव प्राणी से लेकर निर्जीव वस्तु एवं प्राकृतिक संसाधनों से जुड़ी कई सारी मान्यताओं का वर्णन होता है। यह परंपरा संभवतः मानव समाज में आदिकाल से ही शुरू हो गई होगी। मानव ने प्रकृति के साथ-साथ अपने स्वयं के जीवन में परिवर्तन देखे, इस परिवर्तन को मौखिक रूप में उसने अपनी अगली पीढ़ी को स्थांतरित किया। यह ज्ञान गीतों, नाटकों, कथाओं के माध्यम से आगे बढ़ता रहता है। व्यक्ति लोककथाओं में लोक-कल्याण की भावना के साथ-साथ अपने प्राचीन समय के इतिहास, धर्म, रीति-रिवाज, परंपराएँ, व्यवहार एवं निषेध जैसी तमाम तरह की मान्यताओं को स्थान देता है। आज की स्थिति एवं वर्तमान बदलते परिवेश के अनुसार लोककथाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। वर्तमान में कोरकू समुदाय सांस्कृतिक बदलाव के दौर से गुजर रही है। इस दौरान लोककथाएँ बेहद प्रासांगिक हो जाती है। कोरकू अपने लोक समाज के सभी किरदारों या संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। लोककथाएँ अपने प्रकार्यात्मक महत्त्व के कारण समाज में अपने माध्यम से इन्हें एकजुट करके रखे हुए है। कोरकू लोककथाएँ उनकी विशिष्ट जीवनशैली को प्रदर्शित करती है। इनकी लोककथाएँ मुख्यतः व्यक्ति एवं समाज के व्यवाहरों को दिशा निर्देशित करती है। समाज का स्वभाव कैसा होना चाहिए एवं सामाजिक प्राणी होने के नाते हमें समाज एवं समाज के अन्य सदस्यों से कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका वर्णन इनकी लोककथाओं में मिलता है।

बीज शब्द-: महाराष्ट्र, अमरावती, मेलघाट क्षेत्र, कोरकू जनजाति, लोक कथा, प्रकार्य, संस्कृति।

शोध विस्तार

लोक समाज के सभी अंग एक दूसरे से जुड़े होते हैं, जिससे संपूर्ण लोक समाज का निर्माण होता है। यह जुड़ाव संयोगवश नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक निश्चित आनुभविक आधार और कार्य-संबंध होते हैं, जिसे प्रकार्य कहा जाता है। लोक समाज में प्रकार्य की अपनी विशेष भूमिका होती है। प्रकार्य समाज के सभी संस्थाओं में व्यक्ति एवं उसके कार्य-कारण संबंधों पर आधारित होती है। प्रकार्य के संबंध में मानवशास्त्रीय सिद्धांतों में मैलिनोवस्की का नाम अग्रणी रूप से लिया जाता है। प्रकार्य के संदर्भ में ही मैलिनोवस्की ने 'प्रकार्यवाद' सिद्धांत का प्रतिपादन अपनी पुस्तक *'ए साइंटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर'* (1944) में किया था। इनका मानना है कि संस्कृति के सभी तत्वों का अपना-अपना प्रकार्य है। बगैर प्रकार्य के कोई भी सांस्कृतिक तत्त्व अस्तित्व में नहीं रह सकते हैं। इसके कारण ही सांस्कृतिक तत्त्व आज भी समाज में मौजूद हैं। सांस्कृतिक समग्रता को बनाए रखने के लिए 'प्रकार्यवाद' सामाजिक संस्थाओं द्वारा बनाए गए प्रकार्य का विश्लेषण करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं लोक समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू ही सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक संस्थाओं का कुछ न कुछ प्रकार्य अवश्य रहता है, बगैर प्रकार्य के संस्थाएँ अस्तित्वहीन हो जाएगी। लोक समाज की अपनी संस्कृति होती है जिनमें कई प्रकार के संस्थाएँ देखने को मिलती है। प्रत्येक संस्थाओं का प्रकार्य एक दूसरे से भिन्न होता है। लेकिन अगर बात पूरी संस्कृति की हो तो, ये संस्थाएँ उस पर आश्रित एवं एक दूसरे से संबंधित होते है। इस तरह से संस्कृति में मौजूद सभी संस्थाओं में प्रेकार्यात्मक एकता होती है। इन संस्थाओं का प्रकार्य यह होता है कि वे संपूर्ण संस्कृति को अस्तित्व में बनाए रखे। इन्हीं आधारों पर विशेषकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही समाज में विभिन्न प्रकार के संस्थाओं का जन्म होता है, जिसका अपना एक विशेष प्रकार्य होता है। मैलिनोवस्की के अतिरिक्त फ्रेंच मानवशास्त्री ईमाइल दुर्खिम ने अपनी पुस्तक *'डिविजन ऑफ लेबर'* (1893) में प्रकार्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। दुर्खिम ने समाज को एक जीवधारी के रूप में प्रस्तुत किया है। दुर्खिम समाज को एक वास्तविकत व्यक्ति के रूप में मानते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक में सामाजिक तथ्यों का प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया है। उनके अनुसार जीवधारी अपने शरीर की रक्षा के लिए कई प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, उसी प्रकार समाज के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भी विभिन्न प्रकार के आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है जिसे 'प्रकार्य' कहा जाता है। दुर्खिम के अतिरिक्त हरबर्ट स्पेंसर ने अपनी पुस्तक *'प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी, भाग-1'* (1898) में प्रकार्य पर अपनी अवधारणा दी है। उन्होंने समाज एवं जीवधारियों के बीच की मौलिक समानताओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार शरीर के सभी अंगों के द्वारा एक पूर्ण शरीर की रचना होती है, उसी प्रकार समाज की भी सभी छोटी-बड़ी इकाइयां मिलकर उस समाज की संरचना को बनाते हैं। जिस प्रकार से शरीर के सभी अंगों द्वारा मिलकर विभिन्न प्रकार के प्रकार्य किए जाते हैं ताकि शरीर का अस्तित्व बना रहे, उसी प्रकार समाज की इकाइयाँ भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए विभन्न प्रकार के प्रकार्य को करती है। इनके अलावा रैडक्लिफ ब्राउन ने संरचना-प्रकार्य पर अपना सिद्धांत अपनी पुस्तक *'स्ट्रक्चर एंड फंक्शन इन प्रिमिटिव सोसाइटी'* (1952) में दिया है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना समूहों एवं व्यक्तियों की क्रमबद्ध व्यवस्था को दर्शाता है। व्यक्ति तथा समूह का प्रकार्य समाज की संरचना या सामाजिक जीवधारी की संरचना के आपसी संबंध को प्रस्तुत करना है। सामाजिक प्रकार्य सामाजिक संरचना एवं सामाजिक जीवन इन दोनों के बीच के अंतः संबंध को कहते हैं। सामाजिक संरचना का अध्ययन समाज को अस्तित्व में बनाए रखने वाले प्रकार्य की व्यवस्था के आधार पर किया

जाता है। संरचना एवं प्रकार्य दोनों ही एक दूसरे को सहयोग देते हैं तथा एक दूसरे की निरंतरता में आवश्यक भूमिका निभाते हैं। सामाजिक जीवन में निरंतरता एवं परिवर्तन दोनों ही प्रक्रियाओं के लिए संरचना एवं प्राकार्य का प्रयोग किया जाता है। कोरकू समाज में कई सारी सामाजिक संस्थाएं हैं जिसका प्रकार्य समाज को संचालित करना है। जिसमें सभी कोरकू एक -दूसरे पर आश्रित है। कोरकू समाज अपने अन्य सदस्यों के आपसी अंतः संबंधों के कारण ही अपनी सामाजिक संस्थाओं को बनाए हुए है। कोरकू समाज की संस्थाएं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक व जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्मित की गयी है, जिनका अपना विशेष प्रकार्य है। इनकी संस्थाएं उन्हें आपस में एकजुट करके रखती है। लोककथाएँ भी इन्हीं संस्थाओं में से एक है। व्यक्ति तथा लोककथा यह दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं। लोककथाएँ मौखिक पृष्ठभूमि के कारण सामाजिक परिवेश में आसानी से ढल जाती है एवं उनका स्वरूप मूर्त हो जाता है। कोरकू लोककथाओं में सामाजिक एकता व चरित्र निर्माण संबंधी तत्त्वों जैसी भावना को प्रस्तुत किया जाता है। लोककथाओं का एक विशेष प्रकार्य होता है जैसे इसके माध्यम से सामाजिक एकता बनी रहे एवं समाज की सौहार्दता के साथ कोई छेड़छाड़ न हो सके। ऐसी लोक कथाओं का उद्देश्य समाज की शांति एवं सौहार्द को निरंतर बनाए रखना होता है। इसलिए अधिकांशतः कथाओं में दैवीय पक्ष भी जोड़ दिए जाते हैं, ताकि डर के कारण ही व्यक्ति एक दूसरे से जुड़ा रहे।

लोककथाओं से कोरकू जनजाति की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचार एवं व्यवहार का पता चलता है। कोरकू की लोककथाएँ मुख्यतः समाज एवं व्यक्ति के आचरण पर भी विशेष बल देती है। अच्छा -बुरा, सही-गलत जैसी बातें उनकी लोककथाओं में मुख्य रूप से प्रतीत होता है। लोककथाएँ हर लोक समाज के अनुसार बदलती है इसे व्यक्ति अपने पूर्वजों से सीखता है और भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। कुछ मूर्त तथ्य हैं जैसे कोरकू की उत्पत्ति से जुड़ी लोककथाएँ जो प्रायः सभी जगह एक जैसी है। इनकी लोककथाओं में हिंदू जीवनशैली का प्रभाव देखने को मिलता है। कोरकू जनजाति के धार्मिक विश्वास व पद्धति लगभग हिंदू जैसी ही है। यहाँ के लोग हिंदू पर्व त्योहार जैसे- दिवाली, होली, दशहरा, शिवरात्रि, हनुमान जयंती आदि बड़े धूमधाम से मनाते हैं। ऐसे में इन देवी-देवताओं से जुड़ी लोककथाओं का उनकी संस्कृति में प्रवेश करना संभव है। कोरकू का संबंध रावण से है, वे रावण को अपना पूर्वज मानते हैं। इसके अलावा वे मेघनाथ को भी अपना देवता मानते हैं। रावण, रामायण के दूसरे केंद्र बिंदु थे, इसके बावजूद भी कोरकू के बीच रावण से जुड़ी एक भी लोककथाएँ मौजूद नहीं है।

लोककथाओं के माध्यम से जहाँ देशज संस्कृति का प्रसार होता है, वहीं इसके कई सारे आयाम होते हैं जो समाज में एक नई संस्थाओं को जन्म देते हैं। लोककथाओं के द्वारा निर्मित संस्थाएं लोक समाज में काफी वृहत् स्तर तक जुड़ी होती है। हालाँकि, इनमें समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं एवं रूप परिवर्तित कर निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं। लोककथाओं ने कई नए आवश्यकताओं को जन्म दिया है। कोरकू रावण को अपना इष्ट देवता मानते हैं एवं उनके समाज में रावण का पुत्र मेघनाथ को भी उच्च स्थान प्राप्त है। लोककथाओं में इनका बार-बार वर्णन आता है। वर्तमान में कोरकू जनजाति के लोग रावण एवं मेघनाथ की मंदिर बनाने के बारे में विचार विमर्श कर रहें हैं। यहाँ लोककथाओं के माध्यम से ही समाज में एक नए धार्मिक आवश्यकता का जन्म हुआ है और यह सर्वविदित है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। ऐसे में नई-नई संस्थाएं जब निर्मित होगी तब उनका प्रकार्य भी सामान्य नहीं होगा। यह सब संभव लोककथाओं के माध्यम से ही हुआ है। ऐसे में लोककथाएँ समाज को आगे बढ़ाने में एक नई दिशा प्रदान करती है। समाज का निर्माण व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है। इसके निर्माण काल से ही इसके अस्तित्व की रक्षा के लिए कई तरह के कदम उठाए जाते रहे हैं, ताकि समाज की रूपरेखा व अस्तित्व बना रहे। इनको बनाए रखने के लिए जिन संस्थाओं का निर्माण किया जाता है उनका प्रकार्य ही उनकी निरंतरता को बनाए रखना होता है। कोरकू जनजाति की उत्पत्ति एवं सृजन से संबंधित जो लोककथाएँ हैं, वो आज भी कोरकू समुदाय में एक जैसी है। इनका स्वरूप आज भी वैसे का वैसा ही है। इनकी लोककथाओं में भगवान शिव, रावण, मेघनाथ आज भी सुनने में मिल जाते हैं। इसके अलावा इनके इष्ट देवता मुठवा से जुड़ी लोककथाओं का भी उल्लेख मिलता है। इनकी लोककथाएँ एक सामाजिक सीख की ओर इशारा करती है, जो इनकी लोककथाओं में देखने को मिलता है। लोककथाओं में कोरकू पुरुषों का वर्णन एक मेहनती व हिम्मत न हारने वाला व्यक्ति के रूप में किया जाता है। वहीं महिलाओं का वर्णन कई प्रकार के परीक्षाओं को देने वाली व अपने आप को साबित करने वाली स्त्री-चरित्र के रूप में वर्णित किया जाता है। ये सभी वर्णन लोककथाओं के माध्यम से आज भी किए जा रहे हैं। आज की स्थिति एवं वर्तमान बदलते परिवेश के अनुसार लोककथाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त लोककथा को सुनाने का एक सही स्थान एवं सही समय होता है। कोरकू आज भी इसका पालन करते हैं। वे अपनी लोककथाओं को शाम ढलने के बाद समूह में अन्य लोगों के साथ बैठकर सुनाना पसंद करते हैं। हालांकि कुछ बुजुर्ग ऐसे भी हैं, जो अपने खेतों की रखवाली के लिए खेत के पास बने मचान में रहते हैं, इस वजह से वे वहीं पर कथाओं को सुनाते हैं। लोककथाओं को कहने के दौरान कई बार वे गाँव के अन्य लोगों के मौजूद न होने की बात भी करते हैं। उनका मानना है कि अधिक संख्या में लोगों के बीच लोककथा वाचन से दो फायदे होंगे। एक, लोककथाओं को सुनकर लोग सीखेंगे और दूसरा, अगर उनसे कुछ भूल-चूक हो जाए तो कोई भी उन्हें याद करा सकता है एवं टोक कर सुधार सकता है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि लोककथाओं को सुनने के दौरान अपनी ध्यान संबंधी प्रमाणिकता प्रस्तुत करने के लिए प्रतिक्रिया के रूप में 'हूं-हूं' जैसे शब्दों का उच्चारण करते रहना आवश्यक होता हैं। उनका मानना है कि इससे श्रोता के ध्यान का पता चलता है एवं वक्ता की भी रुचि बढ़ती है। ऐसी गतिविधियां आज भी निरंतर जारी है, जिनका समाज में एक विशेष महत्त्व होता है। वहीं लोककथाओं की तमाम निरंतरताओं के बावजूद उनमें कई सारे परिवर्तन होते हैं जो किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति या किसी विशेष तत्व के प्रभाव के कारण से होती है।

कोरकू लोककथाओं में कोरकू का प्रकृति से अंतः संबंध का पता चलता है। कोरकू का पर्यावरण एवं इसके अंतर्गत रहने वाले सभी जीवों के साथ घनिष्ठ संबंध है। कोरकू वनों, जीव-जंतुओं तथा प्रकृति के अन्य संसाधनों को अपने जीवन में विशेष स्थान दिए हुए है। कोरकू गोत्र में प्राकृतिक तत्त्वों का समावेश है। इनके गोत्र पेड़-पौधे, घास-मिट्टी तथा जीव-जंतु इन सभी के नाम पर है। इन गोत्र से जुड़े तत्त्वों का वे संरक्षण करते हैं तथा इनका दोहन नहीं करते हैं। गोत्र से जुड़ी प्रकृतिक तत्त्वों में उनको बचाने संबंधी बनाए गए निषेधों का पालन भी बड़ी सख्ती से करते हैं। वहीं, जीव-जंतुओं के साथ इनके अंतः संबंध बड़े ही व्यापक स्तर पर प्रस्तुत होते है। वास्तविक जीवन में या लोककथाओं में भी बैल का बड़ा महत्त्व है। बैल इनके कृषि-कार्य का सबसे बड़ा सहयोगी होता है। जहाँ एक ओर पूँजी को महत्त्व देने वाला समाज बैल के बजाए गाय पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है ताकि गाय के दूध से एवं उससे बने अन्य खाद्य पदार्थों से उसे फायदा हो सके। ऐसे समाजों में

बैलों की स्थिति बेहद खराब होती है। ऐसे में कृषक समाज विशेषकर जनजातीय समाज के बीच बैलों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है क्योंकि जनजातीय समाज वृहद कृषि न करके लघु कृषि करता है। इनका मकसद स्वयं के लिए अनाज उत्पादन करना होता है एवं सुदूर वनांछादित क्षेत्रों एवं पहाड़ी स्थलाकृति की वजह से यहाँ ट्रैक्टर जैसे मशीनी उपकरण बेहद कम मात्रा में पहुँच पाते हैं। इसके अतिरिक्त ट्रैक्टर का शुल्क काफी महँगा होता है, जो गरीब किसानों के उपयोग क्षेत्र से बाहर हो जाता है। इस वजह से भी इनके समाज में आज भी बैलों की महत्त्व सबसे अधिक है। बैलों को किसान समतल भूमि से लेकर ऊँची स्थलाकृतियों पर भी ले जा सकते हैं। जहाँ बैल ही सबसे उपयुक्त साधन माने जाते हैं। ऐसे में बैल एवं मनुष्य के आपसी अंतः संबंध और भी मजबूत और दृढ़ हो जाते हैं। कोरकू समाज में गाय की अपेक्षा बैल का मूल्य अधिक है। कृषि के क्षेत्र में बैल कोरकू का सबसे बड़ा सहयोगी है। इस वजह से दोनों एक दूसरे के रक्षक हैं तथा दोनों का प्रकार्य ही एक दूसरे के अस्तित्व की रक्षा करना है।

कोरकू समाज अपनी निरंतरता को बनाए रखने के लिए लोककथाओं को विशेष स्थान दिए हुए है। इनमें उनकी संस्कृति का वर्णन होता है जिनका समाज में प्रकार्यात्मक महत्ता अधिक होती है। इन्हीं को साथ ले कर चलते हुए ही कोरकू समाज व उनकी संस्कृति अपनी उत्तरजीविता को बनाए हुए है। कोरकू ने अपने समाज एवं संस्कृति तथा इसके संस्थाओं का निर्माण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया है। इन संस्थाओं का प्रकार्य ही उन्हें जीवित रखना है ताकि विकट परिस्थितियों में भी अपनी उपस्थिती को बनाए रखे एवं आगे बढ़ते रहें। ऐसे में कोरकू समाज तभी बचेगा जब स्वयं कोरकू बचेंगे क्योंकि कोरकू समाज कोरकू से ही बना है। वर्तमान कोरकू समाज सांस्कृतिक बदलाव के दौर से गुजर रही है। इस दौरान लोककथाएँ बेहद प्रासांगिक हो जाती है। कोरकू अपने समाज के सभी किरदारों या संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। लोककथाएँ अपने प्रकार्यात्मक महत्त्व के कारण समाज में अपने माध्यम से इन्हें एकजुट करके रखे हुए है। इससे सभी कोरकू एक दूसरे पर निर्भर व आश्रित तथा संगठित होकर समाज में रहते हैं। इससे समोज में एकता बनी रहती है और समाज आगे बढ़ता जाता है तथा वह अस्तित्वहीन होने से बच जाता है। आज कोरकू लोककथाएँ बदलाव के दौर से गुजर रही है। कोरकू लोककथाएँ उनकी विशिष्ट जीवनशैली को प्रदर्शित करती है। इनकी लोककथाएँ मुख्यतः व्यक्ति एवं समाज के व्यवाहरों को दिशा निर्देशित करती है। समाज का स्वभाव कैसा होना चाहिए एवं सामाजिक प्राणी होने के नाते हमें समाज एवं समाज के अन्य सदस्यों से कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका वर्णन इनकी लोककथाओं में मिलता है। इसके अतिरिक्त आस्तिक स्वभाव के वजह से ये देवी-देवताओं पर बहुत ही श्रद्धा रखते हैं, जिनका दर्शन उनकी लोककथाओं में देखने को मिलता है। लोककथाओं का उद्देश्य मनोरंजन व सामाजिक एवं नैतिक ज्ञान के लिए भी होता है। जिसका स्थान आज कई सारे भौतिक सामग्रियों ने ले लिया है। इस वजह से लोककथाओं में अब काफी बदलाव आने लगा है। शिक्षित समाज के अंदर भिन्न-भिन्न माध्यमों से दूसरे समाज की लोककथाएँ भी पहुँच रही है, जो उन्हें बहुत प्रभावित कर रहा है। वे अब इन्हें ही अपनी मूल लोककथाओं का दर्जा देने लगे हैं। आज लोककथाओं की तुलना में लोक गीतों का महत्त्व वैसे का वैसा ही है क्योंकि लोकगीतों का प्रयोग विवाह से लेकर जन्म एवं मृत्यु संस्कारों में होता है। पर्व-त्योहारों में भी लोकगीतों का महत्त्व बरकरार है और कोरकू लोग लोकगीतों को बड़े ही आनंदित होकर गाते हैं। यह उनके दैनिक प्रयोग में लायी जाने वाले क्रियाकलाओं में से एक है। गीत उत्सव का प्रतीक है इसलिए लोककथाओं की अपेक्षा में लोकगीतों का कोरकू जनजीवन में उज्ज्वल भविष्य प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :-कोरकू जनजाति की लोककथाओं के अध्ययन के दौरान पता चलता है कि इनकी लोककथाओं में तेजी से ह्रास हो रहा है। कोरकू 'कोरकू' बोली का प्रयोग करते हैं। जिसकी कोई 'लिपि' उपलब्ध नहीं है। लोककथाओं के ह्रास में कोरकू लोगों का ऐसा मानना है कि लिपि के अभाव की वजह से लोककथाओं को सहेजने में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लोककथाओं को जानने वाले अधिकांशतः कोरकू अब या तो नहीं रहे या फिर बुजुर्ग हो जाने एवं याद न रहने के कारण वे भूलते जा रहें हैं। एक समय था जब कोरकू क्षेत्र में बिजली नहीं पहुंची थी उस समय शाम ढलने के बाद सात बजे तक भोजन करके सभी बच्चे एवं वयस्क तथा प्रौढ़ वर्ग भी अपने बुजुर्गों के सामने कथा सुनने को बैठ जाते थे। लोककथा सुनाने वाले खटिया पर बैठे होते थे बाकी सभी लोग बोरा बीछाकर आसपास ही बैठ जाते थे और उनसे कथाएँ सुनते थे। यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही थी। यह मौखिक परंपरा थी जिसे केवल सुनकर ही याद रखा जाता था और भावी पीढ़ी को भी उसी शैली में हस्तांतरित किया जाता था। आधुनिकीकरण में तेजी आने के कारण दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तक भी आधुनिक सुविधाएं पहुँच गई हैं। ऐसे में इन नयी भौतिक संस्कृतियों का उनपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उपाध्याय , विजय शंकर एवं पाण्डेय , गया. (2001). *मानवशास्त्रीय विचारक एवं उनकी विचारधाराएँ* . दिल्ली विश्वविधालय: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय.
2. एल्विन , वेरियर. (1943). *दि एबोरिजिनल्स* . बंबई : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
3. चौरे , नारायण. (1987). *कोरकू का सांस्कृतिक इतिहास* . नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
4. चौरे , नारायण. (1989). *भारतीय जनजाति कोरकूओं के लोकगीत* . नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
5. दोषी , शम्भूलाल एवं त्रिवेदी , मधुसुदन. (2018). *उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* . जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
6. पाटिल , अशोक द. (1993). *कोरकू जनजीवन* . नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
7. पारे , धर्मेन्द्र. (2005). *कोरकू जनजातीय गाथा ढोला कुँवर* . भोपाल: आदिवासी लोक कला अकादमी.
8. पारे , धर्मेन्द्र. (2013). *कोरकू जनजाति की कथाएँ* . भोपाल: आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी.
9. पाण्डेय , गया. (2006). *भारतीय मानवशास्त्र* . नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
10. मुखर्जी , रवीद्र नाथ. (2010). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा* . दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
11. हसनैन , नदीम. (2010). *भारतीय जनजातीय संस्कृति* . नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
12. Gazetteer of India. (2010). *Maharashtra State Gazetteers*. Amravati District. Bombay: The Director, Govt. Printing, Stationary & Publications.
13. Pasayat, Chitrasen. (2003). *Glimpses of Tribal and Folk Culture*. New Delhi: Anmol Publication.
14. Russell, R.V. (1975). *The Tribes and Castes of the Central Provinces of India*. Delhi: Cosmo Publications. Vol (3).
15. Singh, K.S. (1998). *India's Communities*. H-M. Mumbai: Oxford University Press. Vol (5).
16. Singh, K.S. (2004). *People of India*. Maharashtra. Mumbai: Popular Prakashan Pvt. Ltd. Vol (30), Part (2).
17. Sharma, Suresh K. (2010). *Folk culture of India*. Delhi: Vista International Publishing House. Vol (1).
18. Vidyarthi, L.P. (1978). Rise of Anthropology in India. *A Social Science Orientation*. Delhi: Concept Publishing Company. Vol (1).